Volume-2, Issue-5, May-2015 ISSN: 2349-7637 (Online)

RESEARCH HUB – International Multidisciplinary Research Journal (RHIMRJ)

Research Paper

Available online at: www.rhimrj.com

आत्मकथा *“आज के अतीत”* के आधार पर श्री भीष्म साहनी का व्यक्तित्व

Prof. Bharati Oza,
Assistant Professor,
Govt. Arts College,
Gandhinagar, Gujarat (India)

हिन्दी साहित्य में आत्मकथा लेखन आधुनिक युग से पहले ही प्रारंभ हो गया था । सन् 1641 में बनारसीदास जैन द्वारा लिखी गई 'अर्द्धकथा' को हिन्दी की पहली आत्मकथा कहा जाता है । धीरे-धीरे यह विधा भारतेन्दु युग से लेकर आज तक विकसित होती रही है; जिसमें सात्यिकार से लेकर समाज, धर्म, राजनीति और अन्य क्षेत्रों के विद्वानों ने भी अपना योगदान दिया है । "आत्मकथा लेखन में विनम्रता का गुण उतना अपेक्षित नहीं, जैसा सामान्यतः समझा जाता है, जितना निर्वैयक्तिकता का । इस निर्वैयक्तिकता वृत्ति के कारण आत्मकथा निश्चय ही एक आधुनिक और अपेक्षया कठिन कला है ।"[1]

निर्वैयक्तिकता में लेखक निर्भीकता और निःसंगता से अपनी कमियों, कमजोरियों से तटस्थता से परिचित होकर अपनी स्मृति के सहारे जीवनानुभवों को घटना से बाहर रहकर देखते हुए लिखता है । यहाँ वह जैसा है वैसा खुदको खोलता है; छिपाता नहीं । बड़े लोगों की आत्मकथा से पाठक जीवन विषयक बोध ग्रहण करता है । कभी-कभी शोधकर्ता जिस पर शोध करता है उसके बारे में आलोचक से ज्यादा लेखक खुद अपनी बात करता है, वह उसके व्यक्तित्व को ज्यादा प्रमाणित करता है । आत्मकथा में लेखक निर्भीकता से अपनी खूबियाँ और कमज़ोरियाँ बताता है, जो सत्य है । यहाँ लेखक खुद को खोलता है क्योंकि वह खुद को अभिव्यक्त करके इनसे खाली होना चाहता है या दूसरो द्वारा पहनाए गए लिबासों को उतारना चाहता है; जब तक कहेगा नहीं, वह अकुलाता है । अपनी अभिव्यक्ति के बाद वह रिलेक्स हो जाता है ।

हिन्दी के आत्मकथा साहित्य के बारे में डा नगेन्द्र लिखते हैं "इनमें परिवार के व्रत, उत्सव, अन्धविश्वास, परंपराएँ, जीवनमूल्य आदि सभी को स्थान मिला है । सच तो यह है कि भारत का सामाजिक इतिहास लिखने के लिए ये महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करती हैं । शिल्प की दृष्टि से इनमें पत्र, डायरी, संस्मरण आदि सबका सम्मिलित रूप मिलता है । ये प्रेरणा की अक्षय स्रोत हैं तथा उपन्यास का-सा आनन्द देती है ।"[2]

2015, RHIMRJ, All Rights Reserved

यहाँ हिन्दी साहित्य के रचनाकार श्री भीष्म साहनी की आत्मकथा 'आज के अतीत' के आधार पर हम उनके बहुविध व्यक्तित्व का परिचय प्राप्त करेंगे । इस आत्मकथा में कुल बारह खण्ड हैं; जिसमें इनके जन्म के प्रसंग से लेकर जीवन के अंतिम पड़ाव तक की घटनाओं का लेखा-जोखा है । इस किताब के कवरपेज के अंदरूनी प्रारंभिक पेज पर लिखा है "आत्मकथाओं से आमतौर पर आत्मस्वीकृतियों की अपेक्षा की जाती है; इस पुस्तक में वे अंश विशेष तौर पर पठनीय हैं जहाँ भीष्मजी अकुंठ भाव से अपने भीतर बसे 'नायकपूजा भाव' को स्वीकारते हैं, बचपन में बड़े भाई (बलराज साहनी) के प्रभावस्वरूप जो भाव उनके मन में बना, वह बाद तक उनके साथ रहा । हर कहीं वे 'हीरो' को तलाशने लगते ।"[3]

श्री भीष्म साहनी का जन्म 8 अगस्त 1915 को रावलपिंडी (पाकिस्तान) में हुआ था । उनकी हिन्दी और संस्कृत की प्रारंभिक शिक्षा घर में हुई तथा अंग्रेजी और उर्दू स्कूल में सिखी । भीष्मजी ने अंग्रेजी साहित्य से एम ए और बाद में पंजाब विश्वविद्यालय से पी एच डी की उपाधि प्राप्त की । भारत-पाकिस्तान बँटवारे से पूर्व थोड़ा व्यापार किया, साथ ही साथ मानद् अध्यापन भी किया ।

भारत-पाकिस्तान बँटवारे के बाद पत्रकारिता, इप्टा नाटक मंडली में काम तथा मुंबई में बेकारी के कारण पंजाब के अंबाला में तथा खालसा कोलेज; अमृतसर में अध्यापन । तत्पश्चात् भीष्मजी ने स्थायीरूप से दिल्ली विश्वविद्यालय के ज़ाकिर हुसैन कोलेज में साहित्य का प्राध्यापन कार्य किया । इस दौरान उन्होंने रूसी भाषा का अध्ययन और लगभग दो दर्जन रूसी पुस्तकों का अनुवाद भी किया । ढाई साल तक 'नई कहानियाँ' का सौजन्य-संपादन किया । प्रगतिशील लेखक संघ तथा अफ्रो-एशियाई लेखक संघ से वे संबद्ध रहे ।

श्री भीष्मजी को 'तमस' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा हिन्दी अकादमी, दिल्ली का शलाका सम्मान से सम्मानित किया गया । बाद में पद्मविभूषण से उन्हें सम्मानित किया गया । साहित्य अकादमी के वे महत्त्तर सदस्य रहे ।

'आज के अतीत' के प्रथम अंक में भीष्मजी अपने बाल मानस पर गहरे रूप मे अंकित माता-पिता, बड़े भाई, दोस्तों और परिवेशगत संस्कार को व्यक्त करते हैं । पिताजी आर्यसमाजी होने से एक सूत्र उन्हें कंठस्थ था "सादापन जीवन और सजावट मृत्यु है ।"[4] घर में दयानंद सरस्वती के विचारों का प्रभाव होने से आए दिन साधु-स्वामी आते रहते, जिनके पास बैठकर माँ उपदेश सुनती । माँ ज्यादातर यह गाती –

एह दुनिया भांडे दी न्यायी

जिस घड़िया सो भजणा ई

मोतीराम कवी समझ पियारे

अनत खाक विच रलणा ई । [5]

पिताजी हमेशा माँ से ऐसे वैराग भरे गीत सुनकर डाँटते और कहते बच्चों के सामने आशाभरे गीत सुनाने चाहिए । घर में बालक भीष्म की तुलना हमेशा उनसे दिखने में तंदुरस्त और सुंदर उनके बड़े भाई बलराज से की जाती, जिससे उनमें बड़े भाई के लिए उच्च भाव और खुद के लिए हीन भाव होने लगा – "यह श्रद्धाभाव मेरे स्वभाव का ऐसा अंग बना कि धीरे-धीरे हर हुनरमन्द व्यक्ति को अपने से बहुत ऊँचा और स्वयं को बहुत नगण्य और छोटा समझने लगा ।"[6]

भीष्मजी का स्वभाव बचपन से ही घुमक्कड़ था । किसी भी ताँगेवाले के पायदान पर बैठकर कहीं भी पहुँच जाने के कारण उनके पिताजी को भीष्मजी के गले में नाम और पता लिखा हुआ 'बिल्ला' बाँधना पड़ता । अलग-अलग कमरों में विभाजित विशाल दो मंजिला घर दुर्बल बालक की आशाओं और निराशाओं का सहचर था । 'गराज' में बाँधी भैंसे, 'जंगला' जहाँ बैठकर संध्या में हवनकुंड के सामने बैठकर वेदमंत्रो का गान, रसोईघर, पिताजी के व्यापार की बैठक, दो बहनों की किलकारियों से गूँजती छत, किमती चीज वस्तुओं से भरा बड़ा ताला लगाया कमरा और रंगसाज़ की आलमारी ।

मुहल्ले के बच्चों के साथ घूमकर गालियाँ बोलने पर उन्हें दो पैरों के बीच पकड़कर मुँह में मिर्च डालना, गुरुकुल में सीखी संस्कृत के कारण भाई को 'भ्राताजी' कहने पर उपहास का पात्र बनना, स्कूल में पंडितजी द्वारा 'खचरा' उपनाम मिलना ये सारी ऐसी घटनाएँ थीं जो भीष्मजी सरलता से व्यक्त करते हैं ।

पहले घर पर हिन्दी और संस्कृत तथा स्कूल में उर्दू और अंग्रेजी से पढ़ाई ने भीष्मजी में भाषा बहुज्ञता का गुण विकसित किया । स्कूल में मास्टरजी के सामने शरारत, शिक्षा, दोस्तों के साथ मस्ती, बचपन के साथी नौकर पर सारा गुस्सा निकालना ये सारे संस्मरण बालक भीष्म के बाल्यकाल की अनूठी पूँजी थी । कभी-कभी सर्कस-सर्कस खेलना, प्रेस का खेल, नाटक करना ये सारे कार्यकलाप उन्हें भविष्य की इमारत के लिए तैयार कर रहे थे । वे लिखते हैं "बचपन के संस्कार कहाँ तक व्यक्ति के भावि जीवन को प्रभावित करते हैं, कहना कठिन है पर उनकी भूमिका से इनकार नहीं और कहीं-कहीं पर तो वे निर्णायक भी सिद्ध होते हैं ।"[7]

द्वितीय अंक में लाहौर की गवर्मेन्ट कोलेज में एड्मिशन लेकर वहाँ होस्टल में रहने लगे । कुछ दिन वे अपने बहनोई चन्द्रगुप्त विद्यालंकारजी के घर रहे जहाँ उनकी मुलाकात वात्स्यायनजी, देवेन्द्र सत्यार्थी और प्रेमचंद जैसे विद्वानों के साथ रहे । लाहौर में ही कवि सम्मेलन में उन्होंने टैगोर को कविता-पाठ करते सुना और 'चित्रांगदा' में अभिनय करते हुए देखा । इसी दौरान भीष्मजी की दो कविताएँ 'रावी' में छपी और वे खुद छोटे-छोटे नाटक में हिस्सा लेने लगे ।

भीष्मजी होकी खेलते थे किन्तु एक दिन कॉलेज के आखिरी साल के विद्यार्थी अता नून को उनकी जगह पर मैदान में खेलते देखकर, और उसे आखिरी साल का होने से कॉलेज कलर मिलने के बाद उन्हें बुलाने पर वे मन-ही-मन निर्णय कर बैठे कि हॉकी भी नहीं खेलूँगा और साथी खिलाड़ियों से मिलना भी बंद । यहाँ वे लिखते हैं "अब उस घटना को याद करते हुए मुझे पछतावा होता है । मैंने झूठे दंभ के कारण हॉकी खेलना छोड़ दिया ।"[8]

तीसरे अंक में एम ए के इम्तहान के बाद वापस रावलपिंडी लौट आए । इस दौरान बलराजजी की शादी दमयंती नामक युवती से हो गई थी । घर आते ही देखा कि सारा गाँव बदला-बदला लग रहा था और घर आने पर पिताजी के सफेद बाल देखकर उन्हें लगता है "समय की आहटें सुनाई नहीं देतीं पर यदि बरसों का अंतराल पड़ जाए तो बदलाव नज़र आने लगते हैं और मन को बार-बार धक्का-सा लगता है ।"[9] मन से भावुक और अतिसंवेदनशील भीष्म ने घर आते ही देखा कि जैसे ज्यादातर घरों में होता है; यहाँ भी माँ और भाभी में कम बनती है और भाई भी व्यापार छोड़कर लाहौर जाना चाहते थे । 20 सितम्बर 1937 को भाई बलराज को लाहौर के लिए विदा कर रहे दुःखी माता-पिता को देखकर भीष्मजी ने पिताजी के साथ व्यापार में रहने का निर्णय ले लिया । व्यापार में वे कमिशन एजन्ट का काम करते थे किन्तु "मैं गाँधीवाद का भी दामन थामे हुए था । मैं मुनाफे पर काम नहीं करना चाहता था । और मैं विलायती माल भी नहीं बेचना चाहता था ।"[10]

ऐसी विचारधारा से जंग के दिनों में तेज़ी आने पर पिताजी ने उन्हें काम से लाहौर भेजा । भीष्मजी को लगा जहाँ चाह वहाँ राह; क्योंकि वहाँ जाकर संपादक बने भाई बलराज के साथ रहकर वे जीवन की नयी राह खोजना चाहते थे । बाद में बलराजजी शांतिनिकेतन में हिन्दी के अध्यापक के रूप में आचार्य हजारीप्रसाद के संचालन में कार्य करने लगे । उनके भेजे नाटक **'The ghost train'** का भीष्मजी ने हिन्दुस्तानी भाषा में अनुवाद किया और उसे खेला भी । अब वे लाहौर में ऑनररी अध्यापक के रूप में पढ़ाने लगे और नाटक भी खेलने लगे । उनके नाटकों की एक दर्शक शीलाजी उनकी जीवनसंगिनी होनेवाली थी ।

भीष्मजी अब लेख लिखना प्रारंभ कर चुके थे, जो 'विशालभारत' और 'सरस्वती' में छपने लगे । कानपुर में एजेंसी का काम मिलने पर अपनी फुफेरी बहन सत्यवती के घर ठहरे । यहाँ उनका परिचय जैनेन्द्रजी, विष्णु प्रभाकर, बनारसीदास चतुर्वेदी और वात्स्यायनजी जैसे विद्वानों से हुआ । बंगाल में दुर्भिक्ष पड़ने पर यहाँ एक दल नाटक खेलने आया, जो भीष्मजी के लिए 'इप्टा' से परिचय का माध्यम बना । इस नाट्यमंडली में बिनाय राय और प्रेम धवन थे ।

भीष्मजी की पहली कहानी 'नीली- आँखें' पत्रिका 'हंस' में छपी । वे लिखते हैं "कभी-कभी सोचता हूँ कि ज़िन्दगी में मैंने अपनी इच्छाओं से विवश होकर कोई भी दो टूक फैसला नहीं किया । मैं स्थितियों के अनुरूप अपने को ढालता रहता था । मैंने किसी आवेग को जुनून का रूप लेने नहीं दिया । मैं कभी भी यह कहने की स्थिति में नहीं था कि जिन्दगी में यही एक मेरा रास्ता है, इसी पर चलूँगा ।"[11] स्थिति के अनुसार जीनेवाले भीष्मजी यूरोप में जंग के दौरान भारत में भी चल रहे स्वाधीनता आंदोलन में कोंग्रेस के सदस्य बने । बलराजजी शांतिनिकेतन छोड़कर सेवाग्राम गए तो भीष्मजी उन्हें मिलने गए, जहाँ वे गाँधीजी को नज़दीक से देख पाए । गाँधीजी उस समय वहाँ किसी गरीब गुजराती से मिलते रहते थे ।

रावलपिंडी में नदी किनारे हाऊसबोट में ठहरे जवाहरलाल नेहरू से मिलने जा रहे कांग्रेस के स्थानीय प्रमुख के साथ गए । देश के बँटवारे तक भीष्मजी अपना व्यापार संभालते रहे और उन्हें इस सिलसिले में कानपुर, इलाहाबाद जाना पड़ता । एक दिन कानपुर रेल्वे स्टेशन पर एक गोरे सिपाही का रास्ता काटने पर उन्हें धक्का मारकर गिराया गया । ट्रेन में दो सरदारों के बीच हुई ब्रिटिश सरकार की बात सुन लेने पर कोर्ट में ज़बान देने के लिए बुलाया और एक घंटे तक जबाब न देने पर गालियाँ भी खानी पड़ी ।

दर्शनशास्त्र में एम ए करनेवाली शीलाजी के साथ शादी करने पर भी वे 'हुत्थल' मिजाज के ही बने रहे । अब भीष्मजी वामपंथी विचारधारा से प्रभावित होने लगे । एक बार भीष्मजी ने दंगे के दौरान खालसा कुएँ के किनारे चालीस सीख औरतों की लाशें देखी । 6 जून को पाकिस्तान बनाए जाने का एलान होने पर अनिच्छा होते हुए भी पिताजी को घर छोड़ना पड़ा । इसी दौरान भीष्मजी लाल किले पर आज़ादी का झंडा लहराता देखने 13 अगस्त को दिल्ली गए थे, मगर मुश्किल से वापस लौटना हुआ ।

अंक चार के प्रारंभ में पंक्तियाँ हैं –

आज़ादी आई

घर–घाट से आज़ाद

रोजी रोटी से आज़ाद

ठौर–ठिकाने से आज़ाद

आज़ाद ही आज़ाद । [12]

कितना गहरा व्यंग्य है इन पंक्तियों में । सब कुछ छूटने पर भीष्मजी 'इप्टा' से बंबई जाकर जुड़ गए, किन्तु पत्नी और बेटी कल्पना के पालन की ज़िम्मेदारी उन्हें वापस पंजाब में कोलेज में अध्यापन कराने ले आती है । 'इप्टा' की मूल अवधारणा के प्रेरक कम्युनिस्ट पार्टी के जनरल सेक्रेटरी पी सी जोशी को वे मिले । 'इप्टा' इस झंझावाती समय की उपज था । वे लिखते हैं "'इप्टा' कोई नाटक खेलनेवाली संस्था नहीं थी, वह एक लहर थी, एक देशव्यापी सांस्कृतिक आंदोलन था ।"[13]

भीष्मजी 'इप्टा' के कारण कई महान निर्देशक और कलाकारों से परिचित हुए । अब वे पत्नी के साथ जगह–जगह सरकार की नीति के खिलाफ नाटक कर रहे थे; अतः पुलिस उन्हें ढूँढ रही थी ।

अंक पाँच में अध्यापन के लिए वे अंबाला आते हैं, किन्तु उनकी यह तूफानी लहर उन्हें वहाँ चैन से जीने नहीं देती । एक दिन अकस्मात में उनकी हाथ की हड्डी टूट गई "पर केवल हड्डी ही नहीं टूटी, मुझे उन्हीं दिनों, नौकरी से भी बरखास्त कर दिया गया ।"[14] सत्य से जुड़े रहने और गलत को साथ न देनेवाले भीष्मजी नौकरी में, कांग्रेस दल में और 'इप्टा' में भी कभी-कभी भीतर से दुःखी हो जाते । इस अंक में अध्यापक की नौकरी से निकाले जाना, शिमला में अपने पिता के घर बेटी कल्पना को लेकर रह रही शीलाजी को रात दो बजे याद आने पर बेटी के जन्मदिन की शुभेच्छा देने फोन करना; ये सारे मार्मिक प्रसंग भीष्मजी की मूल्यों को लेकर लड़ी जा रही लड़ाई से हमें परिचित कराते हैं । पर भीष्मजी अपने स्वभाव के अनुसार उन्हें जहाँ ठीक न लगे; वहाँ से वे दूसरी तरफ चल देते । सरकारी नीतियों के विरुद्ध नाटक करने पर उन्हें छिपकर रहना पड़ता, इसी सिलसिले में वे जलंधर में थे और पत्नी शीला दिल्ली में पिताजी के साथ विस्थापितों के लिए बनाए गए पटेलनगर में रहती थी । एक दिन ढाबे पर बैठे भीष्मजी ने ऑल इन्डिया रेडियो पर पंजाबी में समाचार पढ़ रही शीलाजी को सुना।

अंक छः में वे दिल्ली आते हैं जहाँ वे निर्मल वर्मा, कृष्ण –बलदेव वैद्य, रामकुमार, मनोहरश्याम जोशी जैसे लेखकों की इतवारी बैठक में बैठने लगे और दो कहानीसंग्रह भी प्रकाशित हुए । नरेश मेहता के संपादकीय में निकाला गया पहला अंक संपादकीय को छोटा करने पर नरेश मेहता के हाथ खींचने पर उसे ग्रहण लग गया । बाद में वे अंक बांधकर रख दिए गए, क्योंकि वे बिके ही नहीं।

अंक सात में भीष्मजी को मोस्को के प्रकाशन गृह में अनुवादक के रूप में चुना गया । इस संदर्भ में वे लिखते हैं "मैं मास्को जाने के लिए इतना उतावला हो उठा था कि कालेज की पक्की नौकरी से इस्तीफा दे दिया, जो कठिनाई से मिली थी ।"[15] रशिया में भारत, टैगोर और भारतीय संस्कृति के प्रति उन लोगों का प्रेम देखकर वे हर्षित हुए ।

भीष्मजी रशिया में धीरे-धीरे आ रही समाजवादी व्यवस्था में कहीं कुछ पसंद न आए ऐसा दिखता तब "जब भी मुझे आसपास के जीवन में कोई त्रुटियाँ नज़र आतीं तो मैं स्वयं ही उनकी सफाई भी ढूँढ लिया करता ।"[16] इस अंक में वे स्वीकार करते हैं कि अनुभव की कमी और पंजाबी होने से तथा हिन्दी भाषा पर पकड़ मज़बूत न होने से अनुवाद में कठिनाई रहती थी । जब एक दिन किसी ने कहा कि अब तुम यहीं के हो गए, यहाँ ही रह जाओ; तब वे अंदर से तड़प उठे और भारत लौट आए । उन्होंने वहाँ मैक्सिम गोर्की, नेपोलियन के की मुलाकात, वहाँ की प्रमुख लाईब्रेरी और वहाँ के लोगों से काफी कुछ पाया था ।

अंक आठ में भीष्मजी का कहानीकार, नाटककार, उपन्यासकार और संपादककार का व्यक्तित्व खुलकर हमारे सामने आता है । वे लिखते हैं "जब भी कोई नया काम हाथ में लेता हूँ तो मेरा मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है । कभी तो अत्यधिक उत्साह के कारण, कभी दायित्वबोध के कारण, कभी बचपन के उन संस्कारों से विवश होकर मैं उसमें कूद पड़ता हूँ ।"[17] बचपन के इन्हीं संस्कारों से वे संपादक बनने पर बड़े-बड़े दिग्गज लेखक और समीक्षकों के साथ रहकर भी उनसे प्रभावित हो जाते और कभी-कभी उनके प्रति भक्तिभाव उमड़ जाता, जिसका वे सहजता से स्वीकार करते हैं । ऐसा अनुभव उन्हें कृष्णा सोबती, नामवरसिंह, निर्मला जैन, नेमिचंद जैन, जैनेन्द्रजी आदि के साथ रहने पर उन्होंने महसूस किया है, किन्तु उनसे वे लाभान्वित भी हुए थे ।

नौवें अंक में भिवंड़ीनगर में हिन्दू-मुस्लिम दंगों के कारण हुई शहर की हालत को देखकर वे लिखते हैं "भिवंडी में दाखिल हुए तो मुझे लगा जैसे मैं उस नगर का दृश्य कहीं देख चुका हूँ । चारों ओर छाई चुप्पी, बरामदों, छतों पर खड़े इक्का-दुक्का लोग, खाली सड़कें, मानो समय की गति थम गई हो ।"[18] और इसी थम गई गति से निकला 'तमस'; और सालों से मन की परतों में दबी भारत-विभाजन की पीड़ा शब्द के रूप में बह निकली; जिस पर दस वर्ष पश्चात् इस पर फिल्म भी बनी । भीष्मजी 'कबीरा खड़ा बाज़ार में', 'रंग दे बसंती चोला', 'माधवी', 'मुआवजे' आदि की रचना प्रक्रिया और उनके मंचन की बात करते हुए लिखते हैं "हाँ इसमें संदेह नहीं कि मंचन कला की जानकारी नाटक लेखन में निश्चय ही सहायक होती है पर तभी जब वह उसकी सर्जनात्मक कल्पना को नई स्फूर्ति दे, न कि उसके मस्तिष्क का बोज़ बन जाए ।"[19]

अंक दस में अफ्रो-एशियाई लेखक संघ के कार्यकलाप के अपने अनुभव बताते हैं । इसी दौरान उन्होंने वियतनाम की यात्रा की; बाद में वहाँ से कम्पूचिया और उत्तर कोरिया के कुछ प्रदेश । इस यात्रा में वे वहाँ के राजा और महत्वपूर्ण स्थलों की यात्रा के बाद इस यात्रा को 'तीर्थयात्रा' का नाम देते हैं । वे वहाँ के रंगमंच पर प्रस्तुत नाटक से प्रभावित हुए और वहाँ की संस्कृति से भी ।

अंक ग्यारह में प्रगतिशील लेखक संघ की बात करते हुए लिखते हैं "प्रगतिशील लेखक संघ की भूमिका एक सामाजिक सांस्कृतिक लहर के रूप में रही, संगठन बन जाने के बाद भी उसने संस्था का रूप नहीं लिया ।"[20] भीष्मजी के मतानुसार यह संघ साहित्य की दुनिया में साथीपन की भावना विकसित करता रहा ।

अंक बारह में भीष्मजी बचपन में खो चुके अपनी दो बहनों के बाद एक-एक जैसे पिताजी, माताजी, बड़ा भाई और अंत में पत्नी को हमेशा के लिए इस दुनिया से विदा कर देने के बाद जीवन के इस मोड़ पर पहुँचकर एक व्यापक जीवन दर्शन पूरे अंक में हमें प्रस्तुत करते दिखाई पड़ते हैं । उसमें से एक कथन यहाँ रखना उपयुक्त होगा "जब दुनिया पर आँखें खोलो तो नजर बाहर की ओर जाती है, पर जब दुनिया छोड़ने का वक्त आए तो नज़र लौटकर अपने पर आ जाती है । दुनिया में क्या देखा, क्या पाया, झोले में क्या भरकर लाए इसीका लेखा जोखा करने का मन करता है ।"[21]

'आज के अतीत' की अंतिम पंक्ति के साथ हम भीष्मजी की अंतिम स्थिति को देख सकते हैं-

"रात सारी तो हंगामा गुस्तरी में कटी

सेहर करीब है, अललाह का नाम ले साकी ।"[22]

इस आत्मकथा में लेखक ने सरल और सहज शैली में सच्चाई से खुद को अभिव्यक्त किया है । जहाँ तक वे अपने भीतर तक पैठ पाए; गहरे उतरे हैं और अपनी हीनता, कमियों को तथा अनुभवों में प्रस्तुत उनकी दृष्टि को प्रामाणिकता से रखा है । मूलतः आत्मकथाकार अपनी आत्मकथा में खुद को प्रामाणिकता से खोलकर अपने ही द्वारा बाँधी गयी अपनी ग्रंथियों को खोलकर उनसे मुक्त होता है । आत्मकथा के अंत में एक ऐसा ही प्रामाणिक कथन है "-----ताकि किसी-न-किसी तरह ज़िन्दगी के 'अखाड़े' में बना रहूँ । ऐसा ही मन करता है ।"[23]

भीष्मजी की पूरी आत्मकथा देखने पर हमें लगता है कि डॉ -नगेन्द्र का कथन "जब कोई व्यक्ति अपनी जीवनी स्वयं लिखता है तब उसे 'आत्मकथा' कहते हैं, किन्तु अपने चरित्र का विश्लेषण करना सरल नहीं है, क्योंकि यदि लेखक अपने गुणों का वर्णन करता है तो आत्मप्रसंशक कहलाता है, यदि दोषों का उल्लेख करता है तो य हभय बना रहता है कि कहीं श्रद्धालु जनों की श्रद्धा ही न समाप्त हो जाए; और यदि वह अपने दोषों का उल्लेख नहीं करता तो सच्चा आत्मकथा लेखक होने का अधिकारी नहीं है ।"24 पढ़कर हम कह सकते हैं कि आत्मकथा लिखना दो धारवाली तलवार पर चलने जैसा काम है ।

अंत में हम भीष्मजी की आत्मकथा 'आज के अतीत' के आधार पर उनके व्यक्तित्व के बारे में कहें तो इसी किताब के अंदरुनी पृष्ठ पर लिखे इस कथन से सहमत होते हैं "कथाकार के नाते भीष्म साहनी सहज और सुगम कहानीपन के हिमायती रहे हैं, रचना में भी और विचारों में भी । उनकी कहानियाँ साफ ढंग से अपनी बात पाठक तक पहुँचाती हैं, शिल्प और प्रयोग के नाम पर उसे उलझाती नहीं । यही सगजता और 'आम आदमीपन' उनकी इस आत्मकथा में दृष्टिगोचर होता है ।---जिस आसानी से वे इन पृष्ठों पर 'तमस' और 'हानूश' जैसे क्लासिक्स की रचना-प्रकिया के बारे में बता देते हैं, वह हमें चकित करती है । उससे लगता है जैसे भीष्मजी पहले हमारे मित्र हैं, उसके बाद लेखक ।"25

संदर्भग्रंथ :

1 चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, अठारहवाँ संस्करण, 2005, पृ 161 ।
2 संपा डॉ नगेन्द्र; सह संपा डॉ सुरेशचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, तेईसवाँ संस्करण, 1994, पृ 711 ।
3 साहनी, भीष्म, आज के अतीत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2003, कवरपेज ।
4 साहनी, भीष्म, आज के अतीत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2003, पृ 15 ।
5 वही, पृ 11 ।
6 वही, पृ 47 ।
7 वही, पृ 41 ।
8 वही, पृ 82 ।
9 वही, पृ 89 ।
10 वही, पृ 94 ।
11 वही, पृ 101 ।
12 वही, पृ 136 ।
13 वही, पृ 141 ।
14 वही, पृ 160 ।
15 वही, पृ 183 ।
16 वही, पृ 194 ।
17 वही, पृ 217 ।
18 वही, पृ 225 ।
19 वही, पृ 240 ।
20 वही, पृ 269 ।
21 वही, पृ 286 ।
22 वही, पृ 311 ।
23 वही, पृ 311 ।
24 संपा डॉ नगेन्द्र; सह संपा डॉ सुरेशचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, तेईसवाँ संस्करण, 1994, पृ 595 ।
25 साहनी, भीष्म, आज के अतीत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2003, कवरपेज ।

2015, RHIMRJ, All Rights Reserved

ISSN: 2349-7637 (Online)